Page No.: 1
Date:

B.A-(HONS) HINDI, PART-I, PAPER-I

इतिहास एवं काव्य

कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि (सूरदास)

हिन्दी-साहित्य में कृष्णभक्ति की अजस्त्र धारा को प्रवाहित करने वाले भक्त कवियों में सूरदास का स्थान मूर्धन्य है। उनका जीवनवृत्त उनकी अपनी कृतियों से आंशिक रूप में और बाह्य साक्ष्य के आधार पर अधिक उपलब्ध होता है। इसके लिए 'भक्तमाल' (नाभादास), चौरासी वैष्णवन की वार्ता (गोकुलनाथ), वल्लभदिग्विजय (यदुनाथ) एवं 'निजवार्ता' का आधार लिया जाता है। श्री हरिरायकृत भावप्रकाशवली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट ब्रज की ओर स्थित 'सीही' नामक गांव में सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इसके अतिरिक्त सूर के जन्मस्थान के विषय में और कोई संकेत नहीं मिलता। इस वार्ता में सूर का चरित गऊघाट से आरंभ होता है, जहां वे वैराग्य लेने के बाद निवास करते हैं। यहीं श्री वल्लभाचार्य से उनका साक्षात्कार हुआ था। अधिकांश विद्वानों ने सीही गांव को ही सूरदास का जन्मस्थान माना है।

सूरदास का जन्मकाल 1478 ई. स्थिर किया जाता है। उनके जन्मांध होने या बाद में अंधत्व प्राप्त करने के विषय में अनेक किंवदंतियां एवं प्रवाद फैले हुए हैं। वार्ता ग्रंथों के अनुसार 1509-10 ई. के आसपास उनकी भेंट महाप्रभु वल्लभाचार्य से शिष्य बनने के बाद वे चंद्रसरोवर के समीप पारसोली गांव में रहने लगे थे; वहीं 1583 ई. में उनका देहावसान हुआ। उनकी मृत्यु पर गो. विट्ठलनाथ ने शोकार्त्त होकर कहा था: "पुष्टिमार्ग को जहाज जात है सो जाको कछु लेना होय सो लेउ।

भक्त मंडली उनके पद सुनने एकत्र हो जाती थी। उनके पद विनय और दैन्य भाव के होते थे, किंतु श्री वल्लभाचार्य के संपर्क में

आने पर उन्हीं की प्रेरणा से सूरदास ने दास्य भाव और विनय के पद लिखना बंद कर दिया था सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की पद रचना करने लगे। डॉ. दीनदयालु गुप्त ने उनके द्वारा रचित पच्चीस पुस्तकों की सूचना दी है, जिनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्यलहरी, सूरपचीसी, सूररामायण, सूरसाठी और राधारससकेलि प्रकाशित हो चुकी हैं। वस्तुतः 'सूरसागर' और साहित्यलहरी ही उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। 'सूरसारावली' को अनेक विद्वान अप्रामाणिक मानते हैं किंतु ऐसे विद्वान भी हैं, जो इसे 'सूरसागर' का सार अथवा उसकी विषयसूची मान कर इसकी प्रामाणिकता के पक्ष में हैं। 'सूरसागर' की रचना 'भागवत' की पद्धति पर द्वादश स्कंधों में हुई है। 'साहित्यलहरी' सूरदास के सुप्रसिद्ध दृष्टकूट पदों का संग्रह है।

सूर-काव्य का मुख्य विषय कृष्णभक्ति है। 'भागवत' पुराण को उपजीव्य मान कर उन्होंने राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन 'सूरसागर' में किया है।

सूर के भाव-चित्रण में वात्सल्य भाव को श्रेष्ठतम कहा जाता है। बाल-भाव और वात्सल्य से सने मातृहृदय के प्रेम-भावों के चित्रण में सूर अपना सानी नहीं रखते। वात्सल्य भाव के पदों की विशेषता यह है कि उनको पढ़ कर पाठक जीवन की नीरस और जटिल समस्याओं को भूल कर उनमें मग्न हो जाता है। सूरदास के भ्रमरगीत में केवल दार्शनिकता और आध्यात्मिक मार्ग का ही उल्लेख नहीं है, वरन् उसमें काव्य के सभी श्रेष्ठ उपकरण उपलब्ध होते हैं। वरन् उसमें काव्य के सभी श्रेष्ठ उपकरण उपलब्ध होते हैं। सगुण-भक्ति का ऐसा सबल प्रतिपादन अन्यत्र देखने में नहीं आता। इस प्रकार सूर-काव्य में

प्रकृति, सौंदर्य, जीवन के विविध पक्षों, बालचरित्र के विविध प्रसंगों, क्रीड़ाओं, गोचारण, रास आदि का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। रूपचित्रण के लिए नख शिख वर्णन को सूर ने अनेक बार स्वीकार किया है। ब्रज के पर्वों, त्योहारों, वर्षोत्सवों आदि का भी वर्णन उनकी रचनाओं में है।

सूर की समस्त रचना को पढ़ना, गढ़ना ही समीचीन है। ब्रजभाषा के अप्रतिम सूरदास ने इस भाषा को जो गौरव गरिमा प्रदान की, उसके परिणामस्वरूप ब्रजभाषा अपने युग में काव्यभाषा के राजसिंहासन पर आसीन हो सकी। सूर की ब्रजभाषा में चित्रात्मकता, आलंकारिकता, भावात्मकता, सजीवता, प्रतीकात्मकता तथा बिम्बात्मकता पूर्ण रूप से विद्यमान है। ब्रजभाषा को ग्रामीण जनपद से हटा कर उन्होंने नगर और ग्राम के संधिस्थल पर ला बिठाया था। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग करने पर भी उनकी मूल प्रवृत्ति ब्रजभाषा को सुंदर और सुगम बनाने की ओर ही थी। ब्रजभाषा की ठेठ माधुरी यदि संस्कृत और अरबी फारसी के शब्दों के साथ सजीव शैली में जीवित रही है, तो वह केवल सूर की भाषा में ही है।

सूर की भक्तिपद्धति का मेरुदंड पुष्टिमार्गीय भक्ति है। भगवान की भक्त पर कृपा का नाम ही पोषण है: 'पोषणं तदनुग्रहः'। पोषण के भाव को स्पष्ट करने के लिए भक्ति के दो रूप बताये गये हैं - साधन रूप और साध्य रूप। साधन भक्ति में भक्त को प्रयत्न करना होता है, किंतु साध्य रूप में भक्त सब कुछ विसर्जित करके भगवान की शरण में अपने को छोड़ देते हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति को अपनाने के बाद प्रभु स्वयं अपने भक्त का ध्यान रखते हैं, भक्त तो अनुग्रह पर भरोसा करके शांत बैठ जाता है। इस मार्ग में भगवान के अनुग्रह पर ही सर्वाधिक बल दिया जाता है।

वैष्णव संप्रदायों में माधुर्य भाव की भक्ति को अन्य प्रकार की भक्ति पद्धतियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है। कारण यह है कि भक्तिगत संबंध की निकटता और अनन्यता की दृष्टि से माधुर्य भाव

में जो उत्कर्ष है, वह अन्य प्रकार की भक्ति में परिलक्षित नहीं होता। विविध लीलाओं के प्रसंग माधुर्य-भाव को स्पष्ट करने वाले मनोरंग प्रसंग हैं, जिनमें भगवान की असीम शक्ति को पति रूप में वरण करके गोपियां सुखी होती हैं। दानलीला आदि में असंदिग्ध शब्दों में सूर ने गोपियों के द्वारा माधुर्य के अवलंबन के अतिरिक्त कृष्ण के अन्य सभी रूपों की अवहेलना करके यह प्रदर्शित किया है कि अनन्य भाव की चरम परिणति गोपियों के माधुर्य-भाव में ही हो सकती है, गोपियों के द्वारा कृष्ण की प्राकृत और अति प्राकृत दोनों प्रकार का गौरव-महिमा का उपहास कराके यह दिखाया गया है कि उनका प्रेम उनकी इंद्रियों और मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति पर निर्भर है, जिसका आधार कृष्ण का मनोहर रूप तथा उनकी प्रेम-प्रवण लीलाएं हैं। ज्ञानमार्ग के पथिक उद्धव द्वारा सगुण प्रेम की भक्ति को स्वीकार करना इस बात का प्रमाण है कि यह अतिप्रकृति वासना या शृंगार की अश्लीलता से सर्वथा रहित थी और इसमें माधुर्य भाव की प्रधानता होने पर भी तन्मयता की चरम अवस्था भक्तों को हुई थी।